तेरी मेरी सबकी बात

हिन्दू कोड बिल बनाम कॉमन सिविल कोड

देश में समय समय पर स्त्रियों के सामाजिक जीवन और कल्याण से संबंधित कानूनों में सुधार होता रहा है। इसके साथ ही समान नागरिक संहिता का सवाल भी अक्सर उठता रहा है। अफसोस की बात है कि समान नागरिक संहिता का मुद्दा केवल राजनीतिक मंतव्य बन कर रह गया है। देश की लगभग अस्सी प्रतिशत हिन्दू जनता को हिन्दू कोड बिल के माध्यम से विवाह, तलाक, संपत्ति और बच्चों के संरक्षण संबंधी अधिकार प्राप्त हुए लेकिन अल्पसंख्यक समुदाय की स्त्रियाँ आज भी उनसे वंचित हैं। हिन्दूवादी संगठनों के नेता अक्सर अपने मंचों से समान नागरिक संहिता का प्रश्न उठाते हैं तो मुस्लिम धार्मिक संगठनों के नेता उसका भरपूर विरोध करते हैं। दोनों ही पक्षों द्वारा समान नागरिक संहिता का मुद्दा सांप्रदायिक राजनीति की बलि चढ़ता रहा है। इन सबके बीच अल्पसंख्यक समुदाय की स्त्रियों के भाग्य का फैसला उनके धार्मिक संगठनों और नेताओं पर छोड़ दिया गया है। दूसरे राजनीतिक दलों ने इस विषय पर हमेशा चुप्पी साधी है कि कौन भिड़ के छत्ते में हाथ डाले क्योंकि उनके दलों के मुस्लिम सदस्य इस मुद्दे को 'पवित्रतम' मानते हुए छू नहीं सकते और छूने की इजाज़त भी नहीं दे सकते।

प्रगतिशील और वामदल भी 'भाषा और संस्कृति' के सवालों की तरह समान नागरिक संहिता के विषय पर बात नहीं करना चाहते। अल्पसंख्यक समुदाय के हितों की रक्षा करना निश्चित रूप से वामदलों का एजेंडा होना चाहिये लेकिन इसके साथ ही उनके मानवाधिकार और सम्मान की रक्षा का एजेंडा भी होना चाहिये। सामाजिक न्याय की हकदार प्रत्येक समुदाय की स्त्री है लेकिन वोट की राजनीति अवसरवादी नारे गढ़ने की सुविधा सभी राजनीतिक दलों को देती है।

इसीलिये सामाजिक संगठनों के साथ ही प्रगतिशील समूहों की जिम्मेदारी बढ़ जाती है। इस बीच कुछ उत्साहवर्धक स्वर सुनायी दिये हैं। इस राजनीतिक–सामाजिक गतिरोध को दूर करने के लिये ज़रूरी है कि मुस्लिम महिला संगठन और प्रगतिशील, जागरुक सोच की महिलाएँ अपने समाज में स्त्रियों के प्रति होने वाले अन्याय के खिलाफ स्वयं आवाज़ उठायें। धार्मिकता के नाम पर होने वाले सामाजिक अन्याय के विरुद्ध लड़ाई आसान नहीं होती और इसलिये विरोध को एक आंदोलनकारी संगठित रूप देना बेहद जरूरी हो जाता है। 1985 में शाहबानो केस के समय मुस्लिम पर्सनल लॉ (शरीयत) के और देश के कानून के बीच फ़ैसले की सूरत नज़र आई थी जब तलाकशुदा वृद्धा शाहबानो ने अपने पति पर भरण पोषण के लिये कानूनी दावा अदालत में किया था। मुस्लिम संस्थाओं और धार्मिक संगठनों ने इस पर बहुत बवाल मचाया और कहा कि अदालतों को मुस्लिमों के तलाक और भरण पोषण के मामलों पर फैसला लेने का अधिकार नहीं है। इस पर अनेक महिला संगठनों ने शाहबानो के पक्ष में आवाज़ उठाई, प्रदर्शन किये। राजनीति के चलते तत्कालीन राजीव गाँधी की कांग्रेस सरकार मुस्लिम धार्मिक नेताओं के आगे झुक गयी और शाहबानो का केस वापिस हो

गया। यह संविधान प्रदत्त अधिकार से वंचित मुस्लिम महिलाओं के लिये यह एक बड़ा झटका था।

इसके बाद की कुछेक घटनाओं का उल्लेख करना इस संदर्भ में समीचीन होगा। यह प्रकरण एक समय अखबारों की सुर्खियाँ बनते रहे। उत्तर प्रदेश में मेरठ के पास के एक गाँव का गुड़िया का प्रसंग उल्लेखनीय है। गुड़िया का पति फौज से लापता था। कई साल इंतज़ार के बाद यह मानकर कि उसकी मौत हो गयी है, उसका दूसरा विवाह कर दिया गया। दूसरे पति से वह गर्भवती थी कि तभी आरिफ़ वापिस आ गया। धार्मिक नेताओं के फ़तवे के कारण उसे वापिस आरिफ़ के पास जाना पड़ा, इस शर्त के साथ कि उसका बच्चा दूसरे पति के परिवार के पास रहेगा। इस सामाजिक उठा–पटक की शिकार गुड़िया की राय, उसकी इच्छा–अनिच्छा का कहीं कोई ज़िक्र नहीं था। वह किस मानसिक यंत्रणा से गुजर रही होगी–इसकी चिन्ता भी किसी को नहीं थी। प्रसव के दौरान गुड़िया मृत्यु को प्राप्त हुई, जो संभवतः उसकी यातना से मुक्ति भी थी। एक अन्य प्रसंग में मुजफ़्फनगर के गाँव की इमराना भाग्यशाली थी कि उसे महिला संगठनों की सहायता मिली। पाँच बच्चों की माँ इमराना अपने ससुर द्वारा बलत्कृत होती रही। जब उसने पुलिस में शिकायत की तो ससुर गिरफ़्तार हुआ। तभी फ़तवे बाजी शुरू हो गयी और इमराना को आदेश मिला कि अब उसे अपने ससुर की पत्नी बनकर रहना पड़ेगा। महिला संगठनों की सक्रियता और अदालत की कार्यवाही से इमराना को न्याय मिला और उसके ससुर को जेल हुई। इसी तरह उड़ीसा में भद्रक की रहने वाली नज़मा का प्रकरण है। उसके पति ने शराब के नशे में तीन बार तलाक कहकर तलाक दे दिया। होश में आने पर पति ने क्षमा याचना कर ली और वे पहले की तरह रहने लगे। किसी बन्दे ने उन्हें सलाह दे दी कि एक बार जाकर किसी मौलवी से सलाह ले लो। सलाह ये मिली कि अब यह संबंध नाजायज है और हलाला का आदेश दिया। आदेश न मानने पर उन्हें गाँव से बाहर खदेड़ दिया गया। नज़मा और उसके पति को भी अंततः न्यायालय से ही न्याय मिला।

इस बीच एक खबर के अनुसार फरवरी, 2016 में देहरादून की सायराबानो ने अपने पति के विरुद्ध अदालत में केस दर्ज कराया है। तीन तलाक के द्वारा उसके पति ने उसे तलाक दे दिया। सायराबानो ने तीन तलाक, हलाला और बहुविवाह के खिलाफ़ शरीयत कानून को अदालत में चुनौती दी है। हलाला के अंतर्गत यदि एक तलाकशुदा स्त्री अपने पति के साथ पुनः विवाह करके रहना चाहती है तो उसे पहले किसी अन्य व्यक्ति से विवाह करना पड़ेगा। अदालत ने उसकी याचिका का संज्ञान भारतीय संविधान द्वारा दिये गये कानूनों के अंतर्गत लिया है।

0 0 0

इस संदर्भ में दिसंबर 2015 में अंग्रेज़ी की सुप्रसिद्ध लेखिका नयनतारा सहगल का अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में दिया गया व्याख्यान उल्लेखनीय है। अवसर था 'के०पी० सिंह स्मृति व्याख्यान' जिसका यह छठा संस्करण था। नवंबर 2009 में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के प्रो० कुँवरपाल सिंह के निधन के बाद विश्वविद्यालय ने उनकी स्मृति में हर वर्ष व्याख्यान के आयोजन की घोषणा की थी।

नयनतारा सहगल पिछले समय से लगातार सुर्खियों में रही हैं और वैचारिक असहमति के कारण जो लेखक मारे गये उसके विरोध में आवाज़ बुलंद करती रही हैं। अंधविश्वास और अवैज्ञानिक रूढ़िवाद के खिलाफ आंदोलनकर्ता डॉ० नरेंद्र दाभोलकर, सामाजिक, राजनैतिक कार्यकर्ता गोविंद पानसारे के बाद पिछले वर्ष जब कन्नड़ के प्रसिद्ध लेखक एम०एम० कालबुर्गी की हत्या हुई और साहित्य अकादमी सहित अन्य साहित्यिक संस्थाएँ मौन रहीं तो जैसे उनके सब्र का बांध टूट गया और उन्होंने अपना साहित्य अकादमी सम्मान लौटाने की घोषणा की। उसके बाद तो इन घटनाओं से चिंतित देश के प्रबुद्धजन को अपनी चिंता, व्यवस्था–मौन के प्रति आक्रोश और बढ़ते सांप्रदायिक वातावरण के लिये विरोध को प्रकट करने की एक दिशा मिल गयी। बड़ी संख्या में न केवल हिन्दी–अंग्रेज़ी–उर्दू के बल्कि अन्य भाषाओं के लेखकों, संस्कृतिकर्मियों, फिल्मकारों और वैज्ञानिकों ने भी अपने सम्मानों को लौटाने की घोषणा करते हुए पूरे राष्ट्र को और अकादमियों तथा साहित्य संस्थाओं को इस दिशा में सोचने और आवश्यक कदम उठाने के लिये मजबूर किया। हालांकि इसके लिये व्यवस्था समर्थित दलों के कोपभाजन का और तरह–तरह के चरित्र हनन का शिकार भी ये लोग हुए।

सुश्री नयनतारा सहगल का व्याख्यान इसी संदर्भ में था। 'अनमेकिंग इंडिया' में उनका आधारभूत विचार यही था कि एकांगी और संकीर्ण विचारधारा से राष्ट्र प्रगति नहीं कर सकता और प्रधानमंत्री का 'मेक इन इंडिया' जैसा नारा जो राष्ट्र के बहुमुखी विकास के लिये है और विश्व में अपनी विशिष्ट भूमिका को रेखांकित करना चाहता है–वह अर्थहीन हो जाता है। पं० जवाहरलाल नेहरू की बहन श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित (जो स्वतंत्र भारत की ब्रिटेन में पहली हाई कमिश्नर बनीं) की बेटी नयनतारा सहगल ने कहा कि 1975 में जब उनकी बहन तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने आपातकाल लागू किया उन्होंने उस समय भी उसका तीव्र विरोध किया था। आज कुछ दल या संगठन पूरे देश को इस बात के लिये मजबूर नहीं कर सकते कि वे क्या खायें, क्या पहनें और क्या जीवन–पद्धति अपनायें। इन मुद्दों पर असहिष्णु होना और हिंसात्मक होना नयी विचार प्रक्रिया, रचनात्मकता और सामाजिक समरसता को नष्ट करेगा।

असहिष्णुता के मुद्दे पर पिछले एक साल से लगातार चर्चा हो रही है। कमोबेश इसने राजनैतिक रूप भी ग्रहण कर लिया है। हम राजनीति को नकार सकते हैं लेकिन इस बहस के पीछे, 'असहिष्णुता' के मुद्दे से उठने वाले ढेरों–अनकहे और अनसुलझे सवाल बाकी रहते हैं। सामाजिक असहिष्णुता और वर्चस्ववाद का अंततः सबसे अधिक शिकार स्त्रियां होती हैं। वैचारिक असहिष्णुता के अलावा व्यापक स्तर पर सामाजिक और जातीय समूहों के भीतर व्याप्त कट्टरवाद भी समानता और समान नागरिक अधिकारों से स्त्रियों को वंचित करता है और उन्हें न्याय नहीं मिल पाता। अनेक समाजों में लड़कियों को आज भी अपनी पसंद से शादी करने का अधिकार नहीं है। अंतरजातीय विवाह करने पर या गोत्र संबंधी बात आने पर घर–परिवार और समाज द्वारा भीषण विरोध होता है और अक्सर पति–पत्नी की हत्या कर दी जाती है। अंतर–धार्मिक विवाह के प्रकरणों में भी कई बार हिंसा होती है।

सामाजिक और राजनैतिक असहिष्णुता के संदर्भ में पिछले वर्षों में तसलीमा नसरीन और सलमान रश्दी की पुस्तकों पर प्रतिबंध लगाये जाने की चर्चा यहां लाज़मी

हो जाती है। ये प्रकरण भी कुछ समूहों के असहिष्णुतावाद के ही परिणाम रहे हैं। ऐसा ही एक मुद्दा 'कॉमन सिविल कोड' या 'समान नागरिक संहिता' का है। नयनतारा सहगल ने खेद जताया कि आज़ादी के बाद हिन्दू समुदाय के लिये जब पार्लियामेन्ट में 'हिन्दू कोड बिल' लाया गया तो उस जैसा बिल समान नागरिक संहिता के रूप में सभी समुदायों पर क्यों नहीं लागू किया गया? अन्य समुदाय की औरतों को उनके धार्मिक नेताओं के भरोसे क्यों छोड़ दिया गया? बड़ी संख्या में आज भी दूसरे समुदाय की औरतें देश के समान नागरिक अधिकारों से वंचित हैं। जहां तक समाज विशेष से विरोध होने का सवाल है वह तो हमेशा से हर स्तर पर होता आया है। स्त्रियों के जीवन सुधार के सभी मामलों में पितृसत्तात्मक वर्चस्ववाद ने हस्तक्षेप किया है और धार्मिकता के आधार पर हमेशा समाज सुधारों का विरोध होता रहा है। यदि ऐसी धर्म आधारित परंपराओं का जिसके कारण स्त्रियां अन्याय और शोषण का शिकार थीं, विरोध न किया गया होता तो आज भी स्त्रियां मध्यकालीन समाज की तरह सती की जातीं और चारदीवारी में बंद रहतीं।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के प्रबुद्ध जनसमूह में नयनतारा सहगल के इस वक्तव्य का कुछ लोगों ने मुखर तो बहुत लोगों ने मौन समर्थन किया। उनका व्याख्यान पूरे श्रोता समूह द्वारा सराहा गया। कॉमन सिविल कोड पर उनके विचारों पर कुछ लोगों के चेहरों पर असहमति के भाव भी थे।

0 0 0

सामाजिक विकास की जब बात की जाती है तो समाज सुधार के मुद्दों पर विशेष रूप से ध्यान देने की जरूरत होती है और समाज के बड़े वर्ग के हितों की जब बात हो तो उसके लिये संघर्ष भी ज़रूरी हो जाता है। विवेक और निष्ठा के साथ एकजुट होकर ही बड़े उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। परंपरागत वर्चस्ववाद का उपभोग करने वाले वर्ग आसानी से अपने अधिकार त्यागने को तैयार नहीं होते। ये विशेष अधिकार सामाजिक नियमों और परंपराओं द्वारा निर्मित होते हैं जिनका आधार धार्मिक ग्रंथों और धार्मिक गुरुओं द्वारा निर्मित होता है। उन्नीसवीं शताब्दी में शुरू हुए समाज सुधार आंदोलनों से जुड़ी विभूतियों को भी कम संकटों का सामना नहीं करना पड़ा। सती प्रथा के विरोध में आन्दोलनरत राजा राममोहन राय को अपने परिवार का त्याग करना पड़ा। उनके सहयोगियों ने भी हर प्रकार के विरोध का सामना किया। बालविवाह प्रतिबंध कानून के लिये समाज सुधारकों द्वारा लगातार प्रयास होते रहे लेकिन दूसरी ओर हिन्दू समाज का व्यापक वर्ग इसके विरोध में था। बाल विवाह समर्थक धर्म और परंपरा के नाम पर इसका विरोध करते रहे। यही स्थिति विधवा–विवाह कानून की मान्यता के संबंध में थी। इन समाज सुधार कानूनों के विरोध में कट्टरवादी और परम्परावादी हिन्दू समाज के नेताओं ने बड़ी संख्या में हस्ताक्षर इकट्ठा कर ब्रिटेन की महारानी को ज्ञापन भेजे और इन कानूनों को वापिस लेने की मांग की। उनका कहना था कि बाल विवाह को प्रतिबंधित करने से और विधवा विवाह को कानून सम्मत बना देने से हिन्दू बालाएँ चरित्रहीन हो जायेंगी और यह हिन्दू समाज के पतन का कारण बनेगा। हिन्दू धर्म के इन नेताओं को छोटी वय की, खाने खेलने की उम्र की बच्चियों की शादी के उपरांत होने वाली दुर्गत और असामयिक मौतें

दिखाई नहीं देती थीं। बाल विधवाओं की अमानवीय स्थितियों से भी लोग विचलित नहीं होते थे और 'ईश्वर इच्छा' के नाम पर पुरुष समाज को हर प्रकार की छूट थी। अस्सी साल का वृद्ध अगर चाहे तो आठ साल की बच्ची से विवाह रचा सकता था और इसे सामाजिक समर्थन प्राप्त था। दिलचस्प बात यह है कि स्त्रियों की दशा सुधारने वाले इन कानूनों का विरोध अनेक प्रबुद्धजनों ने भी किया और कहा कि यह भारतीय परंपराओं के विरुद्ध ब्रिटिश राज का अनावश्यक हस्तक्षेप है। इस असल परंपरानुसार उस समय की सभी बड़ी हस्तियों ने कम उम्र की कन्याओं के साथ विवाह किये थे।

आज़ादी के बाद पहली जद्दोजहद भारत को एक धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक राज्य बनाने के लिये हुई। इतिहासकार रामचंद्र गुहा ने अपनी पुस्तक 'इंडिया आफ्टर गांधी' में हिन्दू कोड बिल और कॉमन सिविल कोड को लेकर संविधान सभा में हुई बहस का पूरा विवरण प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि ''स्वतंत्र भारत के धर्मनिरपेक्ष राज्य का स्वरूप आज़ादी के आंदोलन के समय ही तय हो गया था। गांधी ने हमेशा स्वतंत्र भारत में सभी धर्मों के लोगों को एक साथ शांति से रहने का आग्रह किया था जिसे उनके वारिस कहे जाने वाले नेहरू ने इसी रूप में ग्रहण किया और यही भावना गांधी के राजनैतिक गुरु कहे जाने वाले गोपाल कृष्ण गोखले की भी थी।

आज़ादी के बाद अलग–अलग समुदायों के निजी कानूनों की जगह एक कॉमन सिविल कोड बनाने की चुनौती थी। परिवार में स्त्री अधिकारों की रक्षा के साथ–साथ आधुनिक समाज के लिये तथा राष्ट्र के जनतांत्रिक स्वरूप के लिये यह एक जरूरी कदम था। प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू और संविधान सभा के अध्यक्ष तथा स्वतंत्र भारत के पहले कानूनमंत्री डॉ. बी.आर. अम्बेडकर दोनों ही इसके लिए कटिबद्ध थे। निजी कानूनों में सुधार नये भारत की धर्मनिरपेक्षता और आधुनिकता की अवधारणा के समक्ष एक चुनौती था। (इंडिया ऑफ्टर गांधी, पृ0 227)

हिन्दू कोड बिल के रूप में अनेक आधारभूत अधिकारों का उपहार स्त्री समाज को आसानी से नहीं मिला। संविधान की धारा 44 में देश के सभी नागरिकों के लिये समान सिविल कोड का प्रावधान किया गया लेकिन संविधान सभा में ही इसका विरोध शुरू हुआ। सबसे पहले मुस्लिम सदस्यों ने इसका विरोध किया और अपने धार्मिक पर्सनल लॉ को बनाये रखने के लिये बहस की। उनका कहना था कि मुसलमानों में उत्तराधिकार, विवाह, तलाक आदि के मुद्दे धार्मिक नियमों के आधार पर तय होते हैं। कुछ सदस्यों ने मुस्लिम समाज पर समान नागरिक संहिता को लागू करना संविधान की मूल भावना के विरुद्ध कहा जिसमें सभी समुदायों को अपने धर्म को मानने की पूरी आज़ादी की बात कही गयी थी। कुछ मुस्लिम सदस्यों का मानना था कि अभी पर्सनल कानूनों को बदलने की बात करने के लिये उचित समय नहीं है और भविष्य में इस पर विचार किया जा सकता है।

डॉ. अम्बेडकर इन दलीलों से सहमत नहीं थे। उनका कहना था कि भारतीय समाज के सभी समुदायों में भीषण असमानता है। स्त्रियाँ सामाजिक अन्याय और लैंगिक असमानता की शिकार हैं। आधुनिक समय की लोकतांत्रिक व्यवस्था इसमें सुधार की मांग करती है। संविधान सभा के मुस्लिम सदस्यों के विरोध के फलस्वरूप अंत में तय हुआ कि वृहद हिन्दू समाज (जिसमें जैन, बौद्ध, सिख समुदाय भी शामिल थे) के लिये हिन्दू कोड बिल हो। इतिहासकार रामचंद्र गुहा का मानना है कि उस

समय की परिस्थितियों में देश विभाजन की त्रासदी का घाव ताज़ा था। भारत में बसे रहने का फैसला करने वाला भारतीय मुस्लिम समुदाय राजनैतिक और सामाजिक सुरक्षा को लेकर आशंकित था। जवाहरलाल नेहरू भी इस नज़रिये से उनके प्रति संवेदनशील थे और मुस्लिम समुदाय में ऐसा कोई संदेश प्रसारित होने देना नहीं चाहते थे जो उन्हें अपनी भारतीय नागरिकता के प्रति दुविधा ग्रस्त बनाये। डॉ. अम्बेडकर पंडित नेहरू से सहमत नहीं थे। उनका मानना था कि अगर हर धार्मिक समुदाय को अपने सामाजिक नियम कानूनों की छूट होगी तो सामाजिक सुधार जैसे कार्यक्रम संभव नहीं हो सकते। भारतीय समाज सामाजिक असमानताओं से भरा है और महिलाएं भी इस सामाजिक असमानता और गैर बराबरी की शिकार हैं। अनेक इतिहासकारों का और उस समय की संविधान सभा के अनेक सदस्यों का मानना था कि नये संविधान निर्माण के वातावरण में बावजूद अल्पसंख्यक समुदाय के विरोध के, समान नागरिक संहिता का निर्माण आसान था। अंततः इस पर सहमति बनी कि फिलहाल समान नागरिक संहिता की जगह कम से कम अस्सी प्रतिशत 'हिन्दू समाज' के लिये समान नागरिक संहिता का प्रावधान हो सकता है जिसमें सिख, बौद्ध, जैन जैसे सभी समुदाय सम्मिलित हों। हिन्दू समाज में यह इसलिये भी संभव होता दिख रहा था क्योंकि उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से ही समाज सुधार आंदोलनों की शुरूआत हो चुकी थी और इस दिशा में 'हिन्दू कोड बिल' के रूप में उसे आगे बढ़ाना आसान था। इसके माध्यम से भारत की सबसे बड़ी जनसंख्या को भी एकीकृत किया जा सकता था जिसकी आज़ादी के बाद सबसे बड़ी जरूरत थी। यह एक क्रांतिकारी कदम था जो परंपरागत रूप से दमित स्त्री समाज को पुरुषों के समान बराबरी के अधिकार देता था। हिन्दू कोड बिल में प्रस्तावित जो बिन्दु प्रमुख थे उनके अनुसार विधवा स्त्री को तथा पुत्रियों को भी संपत्ति में बराबर हिस्से का अधिकार था। दूसरे बिन्दु के रूप में इस कानून के द्वारा स्त्रियों को भी तलाक देने का अधिकार मिलता था। पति की गंभीर बीमारी, अत्याचार अथवा उसके चरित्रहीन होने पर पत्नी को तलाक लेने का और तलाकशुदा स्त्री को पति द्वारा भरण–पोषण प्राप्त करने का अधिकार था। तलाक के बाद बच्चे के अभिभावकत्व के लिये भी इसमें कानूनी प्रावधान था। तीसरा बिन्दु जाति–उपजाति जैसे भेद से परे दूसरे समुदाय में होने वाले विवाह को मान्यता देने के संबंध में था। अंतर्जातीय विवाह किसी भी विधि से हो कानून सम्मत था। इसके अतिरिक्त पुरुषों द्वारा किये जाने वाले बहु विवाह पर रोक लगाने का प्रावधान इस कानून में था और एक पत्नी के रहते दूसरा विवाह कानूनी रूप से अमान्य था। गोद लेने की प्रथा को भी जाति–वर्ग भेद से अलग करने की बात इस कानून में थी।

हिन्दू कोड बिल का विरोध न केवल बाहर बल्कि संविधान सभा में और बाद में बी.आर. अंबेडकर के सभापतित्व में बनायी गयी सलेक्ट कमेटी में भी हुआ। विशेषरूप से राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, हिन्दू महासभा, द्वारका के शंकराचार्य, स्वामी करपात्री जी महाराज जैसे लोगों और उनके अनुयायियों ने भीषण विरोध किया। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ समर्थक कुछ संकीर्णतावादी वकीलों द्वारा भी 'ऐंटी हिन्दू कोड बिल कमेटी' बनायी गयी और देशव्यापी आंदोलन छेड़ा गया। राजेंद्र प्रसाद जैसे व्यक्ति जो बाद में भारत के प्रथम राष्ट्रपति बने वे भी अन्य अनेक लोगों के साथ संविधान सभा के भीतर भरपूर विरोध कर रहे थे। तर्क वही था–परंपरा और हिन्दू धर्मशास्त्र स्त्री को पुरुषों के समान बराबरी का अधिकार नहीं देते। स्वामी करपात्री जी ने तो यहां तक कहा कि–एक

अछूत (बी.आर. अंबेडकर) को कोई अधिकार नहीं कि वो शास्त्रों से संबंधित मामलों में, जो ब्राह्मणों का अधिकार क्षेत्र है, कोई दखल दे। बड़े–बड़े जुलूस निकाले गये, संविधान सभा का घेराव हुआ, तोड़–फोड़ की घटनाएँ हुईं। 1952 में हुए प्रथम आम चुनावों में संन्यासी के रूप में विख्यात प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने इसी विरोध के आधार पर पं० नेहरू के खिलाफ़ चुनाव भी लड़ा। नेहरू जी बहुत बड़े बहुमत से जीते। चुनाव के बाद अनेक प्रभावशाली महिलाएं लोकसभा में आईं। सुभद्रा जोशी, स्वराजवती नेहरू तथा अन्य अनेक महिलाओं और कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों ने इन स्त्री हितों की रक्षा करने वाले हिन्दू कोड बिल का समर्थन किया। बड़ी जद्दोजहद के साथ अंततः 1955 में यह बिल पास हुआ लेकिन अलग–अलग कानूनों के रूप में। 'हिन्दू मैरिज एक्ट 1955 में पारित हो सका। संपत्ति अधिकार, तलाक का अधिकार, भरण पोषण की प्राप्ति का तथा अवयस्क की गार्जियनशिप का अधिकार जैसे अलग–अलग कानून 1956 में बने। यह तमाम विरोधों के बावजूद पं. जवाहरलाल नेहरू की दृढ़ता तथा तत्कालीन कानून मंत्री, संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. बी.आर. अंबेडकर के अथक प्रयासों और धैर्य का परिणाम था कि वृहद हिन्दू समाज की स्त्रियों को बराबरी का हक मिलने की शुरूआत हुई जिसके कारण आज उनको कानून के द्वारा सामाजिक सुरक्षा और आत्मविश्वास मिला है।

उस समय लगातार इन प्रयासों की आलोचना होती रही कि केवल हिन्दू समाज के लिये ही सुधार क्यों। बिल के समर्थकों का यह कहना था कि इस दृढ़ता का परिचय इस कानून को सभी समुदायों पर लागू करके देना चाहिये। समाजवादी जे.बी. कृपलानी ने लोकसभा में बहस करते हुए कहा कि 'हिन्दू कोड बिल में एकल विवाह का प्रावधान सभी समुदायों पर लागू होना चाहिये। उन्होंने पूरे विश्वास से कहा कि मुस्लिम समुदाय भी इसके लिए तैयार है, केवल वे ही (कानून मंत्री और प्रधान मंत्री) आगे बढ़ कर हिम्मत नहीं कर रहे हैं। लोकसभा के सदस्य और पेशे से वकील हिन्दू महासभा के एन.सी. चटर्जी का भी यही तर्क था कि अगर हम सेक्यूलर राष्ट्र हैं और समझते हैं कि बहु विवाह प्रथा हिन्दू स्त्री समाज के लिये अभिशाप है तो हमारी मुस्लिम बहनें क्यों इस लाभ से वंचित रहें और सभी के लिये समान सिविल कोड हो।

आज भी समान नागरिक संहिता (कॉमन सिविल कोड) बहस का विषय है और समय–समय पर उठने वाले सांप्रदायिक उभारों के बीच मुखर होता रहा है। संविधान सभा में जब यह बिल प्रस्तावित हुआ था तो अनेक मुस्लिम सदस्यों का मानना था कि मुस्लिम समाज के लिये अभी उचित समय नहीं है और यह आगे का विषय है। पिछले पैंसठ–छियासठ वर्षों में वोट की राजनीति मुख्यधारा का स्वरूप बन गयी है और इसका साथ जाति आधारित राजनीति ने दिया है। इस अवसरवाद ने सामाजिक प्रश्नों को पीछे धकेल दिया है। समस्या यह है कि समान नागरिक संहिता का विषय केवल हिन्दूवादी संगठनों द्वारा उठाया जाता रहा है जिसके, कारण यह सांप्रदायिक मनोभाव से जुड़ जाता है यहाँ मुस्लिम समाज की स्त्रियों के कल्याण का उद्देश्य नहीं होता। इस तरह यह विषय सांप्रदायिक राजनीति का प्रश्न बनकर रह जाता है। आज उन्नीसवीं सदी जैसे प्रखर सामाजिक आंदोलन नहीं हैं। धार्मिकता का बढ़ता ज्वार दिन–ब–दिन तीव्र होता जा रहा है और इसका प्रभाव राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर दिखाई देता है। ऐसे में अन्य समुदाय की स्त्रियों के हितों की ओर ध्यान कैसे जायेगा। अल्पसंख्यक समुदाय की स्त्रियां स्वयं जब तक इसके लिये मांग नहीं करेंगी

और उठ कर आंदोलन नहीं करेंगी तब तक लोकतांत्रिक राज्य द्वारा प्रदत्त लैंगिक समानता के अवसर नहीं मिलेंगे। यूँ भी जिस तेजी से टैक्नोलॉजी का विस्तार हो रहा है और वह रोजमर्रा की ज़िंदगी का भी हिस्सा बन रही है, उसी तेज़ी से पुनरुत्थानवादी और अतार्किकता का वातावरण बनाने का भी प्रयास हो रहा है। आज इक्कीसवीं सदी में मुस्लिम समुदाय की स्त्रियों के बीच पर्दे का और बुर्के का चलन आश्चर्यजनक रूप से बढ़ा है और विशेषकर नयी पीढ़ी इस ओर तेज़ी से आकर्षित हो रही है। लेकिन कहना होगा कि इन सबके बीच नयी आशा की किरणें भी उदय हो रही हैं। मुस्लिम समाज की ओर से आज अनेक उत्साहवर्धक संकेत मिल रहे हैं। 15 मार्च 2016 को महिला दिवस के अवसर पर अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में भारतीय मुस्लिम महिला आंदोलन की संस्थापक–सदस्य ज़किया सोमन ने शिक्षकों को संबोधित करते हुए कहा कि अब समय आ गया है कि तीन तलाक और हलाला जैसी गैर–कुरानिक मनमानी से सरकार मुस्लिम महिलाओं की रक्षा करे। उन्होंने एक से अधिक शादी के पुरुषों के अधिकार पर भी सवाल उठाया और कहा कि कुरान में इसकी छूट नहीं है क्योंकि पुरुष सभी के साथ एक सा व्यवहार तथा न्याय नहीं कर सकता। ज़किया सोमन ने कहा कि स्त्रियों के प्रति इन अन्यायपूर्ण कामों को देखने के बाद भी मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड खामोश रहता है। उन्होंने आज की परिस्थितियों में मुस्लिम लड़कियों की शादी की उम्र 18 से बढ़ाकर 21 वर्ष किये जाने की भी मांग की।

प्रसिद्ध पत्रकार और लेखक हसन सरूर ने 21 अगस्त 2015 के अपने एक लेख में मुंबई में कार्यरत मुस्लिम महिलाओं के इस प्रगतिशील संगठन के बारे में एक विवरण प्रस्तुत किया है। उनके उस लेख के अनुसार 'भारतीय मुस्लिम महिला आंदोलन' नामक संगठन ने राष्ट्रीय स्तर पर एक व्यापक सर्वे कराया। अपने इस रिसर्च सर्वे में उन्होंने विशेष रूप से निम्न वर्गीय मुस्लिम महिलाओं को शामिल किया जो अशिक्षित थीं और आर्थिक रूप से अपने पति या माता–पिता पर आश्रित होने के कारण सामाजिक रूप से कमज़ोर स्थिति में थीं। सर्वे में शामिल ये महिलाएँ पर्सनल कानून के तहत तलाक और उसके बाद भरण पोषण और उत्तराधिकार संबंधी मामलों में शरीयत आधारित प्राविधानों के कारण वंचना झेल रही थीं और शोचनीय स्थिति में थीं। इस सर्वे के अनुसार 92 प्रतिशत महिलाएँ मुँह ज़बानी या एकतरफा तीन तलाक जैसी प्रथा पर कानूनी प्रतिबंध चाहती थीं जिसके अनुसार कारण–अकारण जब मर्जी हो, मुस्लिम पुरुष अपनी पत्नी को तलाक देकर उसे असहाय अवस्था में छोड़ सकता है जबकि हिन्दू औरतों के साथ ऐसा नहीं होता क्योंकि उनके लिये नीतिबद्ध संवैधानिक कानून हैं। 93 प्रतिशत महिलाओं का कहना था कि संबंध विच्छेद की स्थिति आने पर तलाक से पहले अनिवार्य रूप से दोनों पक्षों के बीच आपसी विमर्श होना चाहिये। 91.7 प्रतिशत महिलाएँ एक शादी के होते हुए पति द्वारा अन्य विवाह करने के विरुद्ध थीं। 86 प्रतिशत महिलाओं का रोष मेहर की अदायगी को लेकर भी था। उनका कहना था कि अक्सर मेहर दिया ही नहीं जाता और जितना या जैसे दिया जाता है उससे तलाकशुदा स्त्री का कोई भला नहीं हो सकता। शरीयत के अनुसार मेहर की राशि निकाह के तुरंत बाद ही दी जानी चाहिये लेकिन अक्सर पुरुष अदा नहीं करते। सर्वे के अनुसार 44 प्रतिशत पुरुष मेहर अदायगी से बच निकलते हैं।

मुस्लिम धार्मिक नेता और ऑल इण्डिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड हमेशा इस बात का विरोध करते रहे हैं कि मुस्लिम समुदाय के लिये विवाह, तलाक, भरण–पोषण और उत्तराधिकार जैसे मामले देश के संवैधानिक कानूनों द्वारा नहीं निपटाये जा सकते अर्थात् यह उनके निजी धार्मिक कानूनों में हस्तक्षेप होगा। कहना न होगा कि 1985 में निम्नमध्यवर्गीय महिला शाहबानो के केस के बाद से आज तक स्थितियों में कोई बदलाव नहीं आया है।

भारतीय मुस्लिम महिला आंदोलन द्वारा कराये गये इस सर्वे में राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग के पूर्व अध्यक्ष प्रो. ताहिर महमूद की बात का भी उल्लेख है जिसमें उन्होंने कहा था कि 'ऑल इण्डिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड' केवल अपने निहित स्वार्थों के अलावा किसी का प्रतिनिधित्व नहीं करता। उनकी राय में बोर्ड के सदस्य शंकाग्रस्त हैं, बकवास करते हैं और बोर्ड को भंग कर दिया जाना चाहिये। उन्होंने यह भी कहा कि तीन तलाक सभी मुस्लिम देशों में प्रतिबंधित है। भारत के मुसलमान क्यों इस सातवीं सदी की परंपरा से बंधे रहना चाहते हैं। तीन तलाक जैसी प्रथा आज टैक्नोलोजी के ज़माने में और आधुनिक हो गयी है। आज टेलीफोन से या ई–मेल से तीन बार तलाक लिखकर कोई मुस्लिम पुरुष अपनी पत्नी को छोड़ सकता है, बिना यह जाने कि वह आगे का जीवन कैसे बितायेगी। नूरजहाँ सफ़िया नियाज़ जो स्वयं इस शोध सर्वे में शामिल रही हैं, उनका कहना है कि मुस्लिम कानूनों को भी संविधान के अनुसार संहिताबद्ध किया जाना चाहिये।

भारतीय मुस्लिम महिला आंदोलन के द्वारा इस सर्वे (परिवार के लिये न्याय : मुस्लिम पर्सनल लॉ में सुधारों के लिये महिलाओं के विचारों का विवरण) की रिपोर्ट प्रधानमंत्री कार्यालय, राष्ट्रीय महिला आयोग के अलावा न्याय पालिका से जुड़े अनेक प्रबुद्ध लोगों को भी भेजी गयी ताकि वे अल्पसंख्यक समुदाय की बहुसंख्यक महिलाओं की वेदना को समझ सकें, उनकी राय से अवगत हों और आवश्यक कदम उठायें।

इससे पहले भी इस 'तीन तलाक' का राष्ट्रीय महिला आयोग ने संज्ञान लिया था। दिसंबर 12, 2004 की आयोग की एक टिप्पणी में चर्चा की गयी है कि अधिकांश इस्लामिक देशों में जिनमें हमारे पड़ोसी पाकिस्तान और बंगला देश भी शामिल हैं, 'तीन तलाक' प्रतिबंधित है। आयोग द्वारा एक पुस्तिका 'मुस्लिम महिलाओं का कल्याण (Welfare of Muslim Women) प्रकाशित की गयी है जिसमें उनके कानूनी और संवैधानिक अधिकारों की जानकारी के साथ ही अन्य इस्लामिक देशों जैसे–तुर्की, ट्यूनीसिया, अल्जीरिया, इराक, ईरान, इंडोनेशिया, पाकिस्तान, बंगला देश में शरीयत कानूनों में किये गये बदलावों की जानकारी भी दी गयी है। पुस्तक में इन बदलावों का विवरण उस समय राष्ट्रीय महिला आयोग की एक सदस्य नफ़ीसा हुसैन ने तैयार किया। उनके अनुसार पाकिस्तान में तीन तलाक को 1961 में ही प्रतिबंधित कर दिया गया था। 'पारिवारिक कानून ऑर्डिनेन्स' के द्वारा विवाह का रजिस्ट्रेशन अनिवार्य किया गया। तलाक की स्थिति में सरकारी अधिकारी की उपस्थिति में समझौते की सभी संभावनाओं पर विचार–विमर्श को आवश्यक बनाया गया और तलाक को केवल अंतिम समाधान के रूप में मान्यता दी गयी। सुश्री नफ़ीसा हुसैन के अनुसार मुख्य समस्या मुस्लिम महिलाओं में जानकारी का अभाव है। दूसरे देशों में स्वयं महिलाओं ने आगे बढ़कर इन स्त्री विरोधी कानूनों के विरुद्ध आवाज़ उठाई। भारत में ऐसी सामाजिक

सक्रियता का अभाव दिखाई देता है। ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने भी इस दिशा में कभी कोई सुधारवादी कदम नहीं उठाये।

इस पुस्तक में दी गयी सूचनाओं के अनुसार पुरुष के बहुविवाह पर तुर्की, मिस्र, सूडान, इंडोनेशिया, इराक और पाकिस्तान में सख्त न्यायिक और प्रशासनिक नियम बना दिये गये हैं, वहीं मलयेशिया और ब्रूनई में बहुविवाह प्रतिबंधित कर दिया गया है। इसके अलावा इन इस्लामिक देशों में तलाकशुदा महिला को अपने पति से भरण पोषण के लिये धनराशि प्राप्त करने का पूरा अधिकार है। भारत में उसे वक्फ़ बोर्ड की कृपा के हवाले कर दिया जाता है। हसन सुरूर के लेख में 'न्यू एज इस्लाम' वेबसाइट के प्रधान संपादक सुल्तान शाहीन के लेख का संदर्भ भी है जिसमें वे मुस्लिम पर्सनल लॉ के मामले में सरकारी हस्तक्षेप की जोरदार वकालत करते हुए लिखते हैं कि भारत की सरकार को इन मामलों का संज्ञान लेना चाहिये। उन्हें भी कानून के अंतर्गत वह संरक्षण मिलना चाहिये जो पाकिस्तान, बंगलादेश सहित सभी इस्लामिक देशों की महिलाओं को मिल रहा है (सऊदी अरब को छोड़कर)।

दरअसल आज समस्या यह है कि आधुनिक विचारों वाले मुस्लिम समाज के लोग भी इन मामलों में कुछ कहने से या धार्मिक नेताओं द्वारा, मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड के नेताओं द्वारा दिये गये फ़तवों, उनके निर्णयों के विरुद्ध कुछ कहने से बचते रहे हैं। सामाजिक पिछड़ेपन और विषमताओं का कारण बनने वाली परंपराओं के खिलाफ़ आवाज़ उठाना साहस की मांग करता है और इसके लिये व्यापक आंदोलन का निर्माण करना पड़ता है जैसा उन्नीसवीं सदी के समाज सुधारकों ने किया था। जैसे संविधान सभा में हिन्दू कोड बिल के प्रकरण में बी.आर. अंबेडकर ने और पं. जवाहर लाल नेहरू ने झेला था।

आज अनेक मुस्लिम महिला संगठन हैं जो पर्सनल कानून के आधार पर स्त्रियों के प्रति होने वाले सामाजिक अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठा रहे हैं। 'द हिन्दू' में छपी एक रिपोर्ट में केरल के कोजीकोड जिले में प्रगतिशील मुस्लिम महिला फोरम ('नीसा') महिलाओं के सामाजिक–वैवाहिक अधिकारों की रक्षा के लिये सक्रिय है। इसकी प्रतिनिधि वी.पी. जुहारा ने सुप्रीम कोर्ट में पिटीशन दायर करते हुए गुहार लगाई है कि मुस्लिम महिलाएं अपने निजी कानून के प्रावधानों से, जो शरीयत कानूनों से समर्थित हैं, भीषण सामाजिक बुराइयों की शिकार हैं।

सायरा बानो ने अदालत में तीन तलाक, हलाला तथा बहुविवाह जैसे नियमों को गैरकानूनी और असंवैधानिक होने के साथ–साथ स्त्रियों के सम्मान और समानता के अधिकार का हनन करने वाला घोषित करने की जो याचिका दर्ज की थी, उसके बाद प्रोग्रेसिव मुस्लिम महिला फोरम द्वारा की गयी अपील से मुस्लिम महिलाओं की जद्दोजहद को बल मिला है। सबसे महत्वपूर्ण बात ये है कि सुप्रीम कोर्ट ने केन्द्र सरकार से पर्सनल लॉ द्वारा मुस्लिम महिलाओं के प्रति होने वाले सामाजिक अन्याय और संविधान प्रदत्त अधिकारों से उनके वंचित रहने के बारे में रिपोर्ट भी मांगी है। धार्मिक और पारिवारिक सत्ता को पुरुष वर्ग आसानी से अपने अधिकार से जाने नहीं दे सकता। सदियों से यह संघर्ष चलते रहे हैं। तीन तलाक, हलाला और बहुविवाह को चुनौती देने वाली उत्तराखंड की सायराबानो द्वारा दायर याचिका को संज्ञान में लेते हुए ऑल इंडिया पर्सनल लॉ बोर्ड ने लखनऊ में अपनी एक बैठक की। अमर उजाला (रविवार 17 अप्रैल 2016) तथा अन्य समाचार पत्रों में छपी रिपोर्ट के अनुसार बोर्ड ने

तीन तलाक को जायज़ करार दिया। बोर्ड ने तीन तलाक, गुजारा भत्ता, चार शादियाँ जैसे मामलों में शरीयत कानून के खिलाफ आ रहे अदालती फैसलों को पर्सनल लॉ में दखलअंदाजी माना है। साथ ही कहा गया कि बोर्ड उत्तराखंड की सायराबानो व एक अन्य मामले में सुप्रीम कोर्ट में स्वयं पैरवी करेगा।'

'अमर उजाला' की एक अन्य खबर के अनुसार बोर्ड के इस फैसले पर लखनऊ की महिलाओं ने नाराज़गी भी जताई है। सामाजिक कार्यकर्ता और लेखिका नाइश हसन ने सवाल उठाया कि अधिकांश इस्लामिक देशों में तीन तलाक गैरकानूनी है, फिर भारत में ही यह क्यों लागू है। तीन तलाक कुरान की मूल भावना के भी विरुद्ध है। यह प्रथा औरत को डरा कर रखने और नियंत्रित करने का एक मजबूत हथियार है। इसी समाचार में बज़्म–ए–ख्वातीन की अध्यक्ष बेगम शहनाज सिदरत ने भी कहा कि एक ओर बोर्ड तीन तलाक को सही मानता है, साथ ही महिलाओं के कोर्ट में जाने का विरोध करता है।

अभी एक अन्य समाचार ईसाई समुदाय की स्त्रियों के हित में प्रकाशित हुआ है। तलाक के नियमों में सुधार करके तलाक के इच्छुक पति–पत्नी के अलग रहने की अवधि को दो साल की जगह एक साल कर दिया गया था। अब यह प्रावधान ईसाई निजी कानून में भी शामिल कर लिया गया है और तलाक के लिये अलग रहने की अवधि उनके लिये भी एक वर्ष हो गयी है।

मध्यकालीन समाज बनाने वाली प्रवृत्तियों के खिलाफ़ व्यवस्था जनित प्रयास जरूरी हैं तो प्रबुद्ध नागर समाज द्वारा बिना किसी प्रकार की अवसरवादिता के प्रगतिशील और जनतांत्रिक मूल्यों के लिये गहन प्रयास भी करने होंगे।

यह विडंबना है कि संकीर्ण परंपरावादी लोग सहज एकजुट हो जाते हैं और निहित स्वार्थों की रक्षा के लिए अधिक सक्रिय होते हैं। स्त्री समानता और जनतांत्रिक मूल्यों के लिये प्रबुद्ध समाज को आन्दोलनकारी के रूप में सक्रिय होना पड़ेगा। परंपरागत सामाजिक दबावों का सामना करके ही समस्त स्त्री समाज को न्याय दिलाया जा सकता है।

नमिता सिंह
28–एम०आई०जी०
अवन्तिका– I,
रामघाट रोड, अलीगढ़